JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

ग्रामीण समाज में अन्तर्जातीय सम्बन्धों के स्वरूप

विकास कुमार यादव[1] एवं डॉ0 अजय कुमार सिंह[2]

[1]शोधार्थी
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

[2]एसोसिएट प्रोफेसर
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

सामाजिक संगठन ब्राह्मण विचारधारा पर आधारित था। हिन्दुओं के कर्म, धर्म एवं संस्कार के दार्शनिक विचारों की मान्यता की ओर संकेत करता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार, प्रत्येक पवित्र हिन्दू अपने पूर्व जन्म के कर्म एवं धर्म के कारण विशेष जाति के कुल में जन्म लेता है। अतः प्रत्येक जाति के लिए अपनी पहचान को कायम रखना अति आवश्यक हो जाता है और उसे यह भी चेष्टा करनी पड़ती है कि समाज में उसकी स्थिति न गिरे। इस प्रकार अपनी स्थिति को बनाए रखना, किसी प्रदूषित तत्व या व्यक्ति से किसी भी प्रकार के संबंध से दूर रहना चाहिए क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि इस प्रकार के संबंध या मेंल–मिलाप से कोई व्यक्ति अपनी प्रस्थिति से गिर सकता है अब हम इस विशेष लक्ष्य पर बल देने वाले सेलेस्टिन बुले के योगदान पर प्रकाश डालेंगे।

शब्दकुंजी : कर्म, धर्म, भोजन, पोशाक, भाषा, प्रथा एवं संस्कार इत्यादि

भूमिका

19वीं शताब्दी में, जर्मन विद्वान कार्ल मार्क्स ने समाज की प्रकृति और समाज व्यवस्था की प्रकृति किस प्रकार महत्वपूर्ण तरीके से अर्थव्यवस्था से प्रभावित होती है, इस पर प्रकाश डाला। एशियाटिक उत्पादन के तरीके के बारे में लिखते हुए उन्होंने अपने अध्ययन में ग्रामीण सामाजिक

संगठन की प्रकृति पर संक्षेप में लिखा है। मार्क्स के अनुसार किसी भी समाज में किसी भी समूह की स्थिति का निर्धारण उस समूह की जमीन के साथ सम्बन्धो पर आधारित होता है तथा इस बात से भी निर्धारित होता है कि ये सामाजिक समूह भूमि स्वामित्व रखते हैं या नहीं।

भूमि पर काम करने वाली जाँतिया अतिरिक्त उत्पादन करती हैं और इसे वे दस्तकार जातियों को देती हैं। ये दस्तकार जातियाँ, इसके बदले में उन्हें पारस्परिक दस्तकारी की निर्मित वस्तुएँ देती है। इसी प्रकार की व्यवस्था में जहाँ दोनो जातियाँ अपनी स्वयं की आवश्यकताओं के लिए तथा परस्पर विनिमय के लिये उत्पादन करती थीं इस तरह एक प्रकार की सुव्यवस्था विद्यमान थी। सामाजिक संगठन की प्रवृत्ति लगभग परिवर्तनहींन थी तथा इसकी विशेषता यह थी कि इसमें संघर्ष और परिवर्तन का अभाव था अथार्त् इस प्रकार की व्यवस्था में जातियाँ अर्थव्यवस्था से उत्पन्न हो रही थीं अथवा मार्क्स के शब्दों में उत्पादन के तरीकों से उत्पन्न हो रही थीं। इस जाति का विशिष्ट गुण–धर्म यह था कि यह अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई थी। अतः जहाँ हम यह पाते हैं कि मार्क्स सामाजिक संरचनाओं को आर्थिक आधारों पर समझने का प्रयास करता है, वही मार्क्स का समकालीन जर्मन समाजशास्त्री मैक वैबर समाज में इसके सोपान के आधार पर व्याख्याएँ ढूँढता है।

सेलेस्टिन बुग्ले

मैक्स वैबर द्वारा जाति का कुछ विशिष्ट गुण–धर्मो के समाजिक एवं कर्मकाण्डीय आधार पर समझने के प्रयासों को फांसीसी विद्वान सेलेस्टिन बुग्ले के लेखन से और अधिक स्पष्ट होता है। उन्होंने जाति पर 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में लिखा था। जाति को परिभाषित करने के प्रयास में काफी हद तक मैक्स वेबर के विचारों को दोहराया गया है। अतः बुग्ले के अनुसार हम यह पाते हैं कि :

1. जाति व्यवस्था ने संपूर्ण समाज को समूहो की वृहत् संख्या में विभक्त कर दिया।
2. ये समूह आनुवांशिक प्रकृति के थे, जिसका अर्थ यह है कि इनके समूहों की सदस्यता जन्म से थी, अर्थात् कोई भी व्यक्ति जाति में जन्म लेता है।
3. ये समूह पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं तथ कुछ निश्चित निषेध इन समूहो के मध्य दूरी बनाकर रखते है,

4. यह दूरी विवाह संबंधी निषेधों में अभिव्यक्त होती है। ये अंतर्विवाह अथार्त् कौन किसके साथ भोजन कर सकता है या कौन किससे भोजन ग्रहण कर सकता है।

5. इस दूरी के बावजूद इन समूहो में एक प्रकार के संबंध पाए जाते हैं। ये संबंध पारंपरिक व्यवसायों की विशिष्टीकृत प्रकृति या श्रम विभाजन पर आधारित अंतर्निभरता स्वरूप ग्रहण कर लेते है।

6. ये कारक या गुण–धर्म मिलकर एकमात्र सिद्धान्त को व्यक्त करते है– शुचिता व प्रदूषण के मध्य कर्मकांडीय विपरीतता।

अतः बुग्ले के अनुसार, जाति के सोपानक्रम में उनका स्थान व उसके सदस्यों के व्यवसाय, उनकी सामाजिक अंतः क्रिया (वैवाहिक अथवा व्यावसायिक) तथा उन पर लगाए गये निषेधों से पहचाना जाता है। सोपानक्रम व समूहों के मध्य ऐसी गुण धर्म दूरी थी जो किसी भी जाति की प्रस्थिति को सोपानक्रम में रखती थी तथा जातियों के मध्य अतंः क्रिया को निर्धारित करती थी।

2. सोपानक्रम

जाति का द्वितीय महत्वपूर्ण गुणधर्म इसी से निकलता है। यह सोपानक्रम का गुण–धर्म अथवा समाज में अनेक खंडो के एक सुनिश्चित योजना के अंतर्गत व्यवस्थीकरण है। इस योजना ने समूहों को श्रेष्ठता एवं हीनता अथवा उच्च और निम्न स्थितियों में रखा। इन समूहों के क्रम विन्यास में पूर्वगामिता का एक मान्य नियम था, जिससे सोपानक्रम में सबसे ऊपर ब्राह्मणो को तथा निम्नतम स्थान पर अछूतो को रखा गया।

3. भोजन, पोशाक, भाषा तथा प्रथा पर निषेध

घुरिए के अनुसार, उपरोक्त दो गुण–धर्म दूरी के विचार से प्रतिबिंबित होते हैं। समूहों के मध्य दूरी तथा सोपानक्रम को विभिन्न समूहों के सदस्यों पर भोजन संबंधी, विवाह संबंधी पोशाक, भाषा एवं प्रथा संबंधी निषेधों को लगाकर बनाया जाता था। इसी के अंतर्गत उच्च व निम्न जातियों को भौतिक रूप से भी एक दूसरे से दूर रखा जाता था। इसका तात्पर्य यह है कि निम्न जाति के लोग उच्च जातियो की भाषा, पोशाक, प्रथाओं का अनुकरण नहीं कर सकते थे, क्योंकि ऐसा करने से जातिबद्ध समाज के आधारभूत नियमों की अवहेलना होती थी और वहीं नियम प्रदूषण को नियंत्रित करता था।

4. प्रदूषण

शुचिता का विचार उस वस्तु के बारे में होता है, जो शूद्र नहीं है अथवा उस क्रिया के बारे में होता है, अपनी शुचिता को छोड़कर प्रदूषित बन जाए। इस प्रकार शुचिता की क्षति प्रदूषित करने वाली वस्तुओं (जैसे–मूल, मूत्र आदि) अथवा मनुष्य (अछूत) के संपर्क में आने से होती है निम्नतम जातियों को सर्वाधिक प्रदूषित माना गया। वस्तुतः प्रदूषण की मात्रा किसी भी समूह की अयोग्यताओं में प्रतिबिंबित होती है। सर्वाधिक प्रदूषित जातियाँ सबसे अधिक सुविधाहीन थीं। इन अयोग्यताओं ने अनेक स्वरूप धारण किए और निम्न जाति को गाँव की प्रमुख सीमा से बाहर रहने के लिए मजबूर किया जाता था। वस्तुतः अनेक गाँवों को सड़कें तथा गलियों में विभक्त किया गया था, जिनमें कुछ विशिष्ट जातियाँ ही प्रवेश कर सकती थीं तथा रह सकती थीं। उदाहरण के लिए, हम तंजौर में कुंबापेहई गाँव में हिन्दू जातियों के तीन प्रमुख विभाजन पाते हैं। ब्राह्मण, गैर–ब्राह्मण तथा आदि द्रविड़ (अछूत)। गाँव में ये भिन्न–भिन्न गलियों में रहते थे, जिसमें ब्राह्मण उत्तर में और आदि द्रविड़ गाँव के दक्षिण में रहते थे इन दोनों क्षेत्रों को धान खेत व मुख्य सड़के अलग करती थीं।

इसी प्रकार निम्न जाति के किसी व्यक्ति की उपस्थिति तथा परछाई भी अछूत मानी जाती थी। मराठा और पेशव के शासन में महर जाति (निम्नजाति के खेतिहर मजदूर) को पूजा स्थल के दरवाजों पर सुबह नौ बजे के पूर्व व दोपहर तीन बजे के बाद प्रवेश नहीं करने दिया जाता था, क्योंकि इस समय परछाई बहुत लंबी होती है और अनजाने में किसी उच्च जाति के व्यक्ति पर पड़कर उसे दूषित कर सकती थी। कुछ क्षेत्रों में विशेष रूप से मालाबार क्षेत्र में निम्न जातियाँ ऐसा कुछ भी प्रयोग नहीं कर सकती थी अथवा पहन सकती थीं, जो उच्च जाति के वस्त्राभूषण शैली का अंग हो इसके अंतगर्त जूते पहनने, छतरी रखने अथवा स्वर्णभूषण पहनने पर निषेध था।

5. व्यावसायिक संघ

घुरिए के अनुसार प्रत्येक जाति एक पारंपरिक व्यवसाय से जुड़ी हुई थी। इसकी चर्चा हम जाति व्यवस्था के उद्भव से संबंधित अनुभाग में कर चुके हैं। चूँकि व्यवसायों के मध्य भी शुचिता व प्रदूषण में भेद किया जाता था, अतः आनुवंशिक व्यवसाय किसी भी जाति की प्रस्थिति के द्योतक थे। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण पुजारी का व्यवसाय करते थे, जबकि निम्न जातियें में नाई, मोची, धोबी आदि व्यवसायों को अपना रखा था।

6. अंतर्विवाह

अंततः प्रत्येक जाति अपने सोपानक्रम व प्रस्थिति को बनाएं रखने के लिए अतंः क्रिया व व्यवसाय पर ही निषेध नहीं लगाती थी बल्कि वैवाहिक संबंधो पर भी निषेध लगाती थी। विभिन्न जातियों के मध्य अंतर्विवाह निषिद्ध होता था। अतः एक जाति के सदस्यों का विवाह उसी जाति के सदस्य से होता था, अर्थात् अतः विवाह प्रथा का प्रचलन था। प्रत्येक जाति को उपभागों या उपजातियों में बाँटा गया क्योंकि ये अंतः विवाह की इकाइयां थीं उदाहरण के लिए, वैश्य सोपानक्रम बनिया जाति को श्रीमाली, पोरवाल, मोध जैसी। अनेक उपजातियों में बाँटा गया। पोरवाल उपजाति को दस्ता व बीसा में फिर विभक्त किय गया। दस्सा दो प्रकार के होते है, जो सूरत व मुम्बई में रहते हैं सूरत व मुम्बई दस्सा के मध्य विवाह होता है।

जे०एच०. हट्टन

घुरिए के कार्य के साथ–साथ जे०एच० हट्टन की विचारधारा का प्रमुख योगदान है। 1946 में प्रकाशित हुई, अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इण्डिया' में हट्टन ने जाति व्यवस्था की संरचना का वर्णन किया है। उन्होंने जाति से जुड़े अंतः समूहात्मक व अंतः वैयक्तिक व्यवहार पर लागू निषेधों व नियंत्रणा की भी चर्चा की है। उन्होंने जाति को बहुत जटिल संस्था माना है। जिसका मूल आधार अतः विवाह की धारणा में है। उन्होंने आगे यह बताया है कि कौन व्यक्ति किसके साथ खान–पान करते है और किस प्रकार इस पर निषेध है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जाति का एक निश्चित आनुवंशिक व्यवसाय भी है। इसके साथ सभी जातियों में विखंडन (ठीक जैसे अणु मिलकर तत्व जैसी वृहत् इकाइयों में विखंडित होता है) तथा संलयन (ठीक जैसे अणु मिलकर तत्व जैसी वृहत् इकाइयों में एकीकृत हो जाते हैं) की प्रक्रियाएँ भी चलती रहती हैं। उदाहरण के लिए 1931 में पशु रखने वाली अहीर, ग्वाला, गोप जैसी अनेक जातियाँ एक नाम यादव के अंतर्गत मिल गई।

हट्टन की यह भी मान्यता है कि जातियाँ परस्पर वैवाहिक निषेध द्वारा अलग–अलग बनी हुई हैं, फिर भी उनके लिए यह निषेध है कि किसी अन्य जाति द्वारा पकाया हुआ भोजन स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस भोजन संबंधी निषेध से अन्य महत्वपूर्ण कारकों पर भी प्रभाव पड़ता है।

उदाहरणार्थ :

1. भोजन बनाने के लिए पानी कौन लाया व किसने भोजन पकाया?
2. किस बर्तन में पानी लाया गया अथवा किस बर्तन में भोजन पकाया गया, अर्थात् मिट्टी के बर्तन, पीतल या ताँबे के बर्तन में? इनमें से प्रत्येक एक दूसरे से कम या अधिक प्रदूषित हैं।
3. किस प्रकार का अर्थात् 'कच्चा' या 'पक्का' भोजन परोसा गया? जल में पकाया गया भोजन (ऐसे भोजन का समजाति या उच्च जाति के लोगों से ही स्वीकार किया जा सकता है) कच्चा भोजन होता है, तथा घी में पका भोजन पक्का भोजन होता है, जिसे अन्य जाति के लोगों द्वारा भी स्वीकार किया जा सकता है।
4. अंततः भोजन के विभिन्न प्रकारो में भी सोपान है। इसलिए शाकाहारी भोजन, माँसाहारी भोजन से उच्चतर माना जाता है। ब्राह्मण सामान्यतया शाकाहारी होते हैं, परंतु कुछ स्थानों पर जैसे बंगाल व कश्मीर में वे माँस व मछली खाते हैं।

अतः खान–पान संबंधी निषेध समूहों के मध्य दूरी व सोपान की प्रकृति के धोतक हैं। भोजन की अस्वीकृति सोपान की श्रेष्ठता का परिचायक है। अंतः क्रिया के इस प्रकार के निषेधों से जुड़ी हुई मुख्य धारणा अशुद्धि की है। इस बात की चर्चा, घुरिए के अध्ययन के अंतगर्त जाति व्यवस्था अनुभाग में की गई थी।

संदर्भ–सूची :

1. गांधी, एम.के., 1954. द रिमूवल ऑफ अनडचॉबेलिटी, नवजीवन पब्लिसिंग हाउसः अहमदाबाद।
2. गर्थ एच.एच.एण्ड. मिल्स, सी. डब्ल्यू, 1948. फ्रॉम मैक्स बेबर, एसेज इन सोसियॉलाजी, रूटलेज एंड केगन पॉलः लंदन।
3. गुल्ड, एच, 1974. लखनऊ रिक्शावालाजः द सोशल ऑर्गनाइजेशन ऑफ एन ऑकप्रेशनल कैटेगरि इन एम. एस. ए. राव (संपादित) सोसियोलॉजी इन इंडिया. ओरियंट लॉगमैनः नई दिल्ली, पृष्ठ 289–308.
4. जैफरी, 1976. डिक्लाइन ऑफ नायर डॉमिनेंसः सोसाय ड पॉलिटिक्स इन ट्रावनकोर 1847 – 1908. विकास पब्लिशिंग हाऊसः दिल्ली।

5. खुसरो, ए. एम., 1965, लैंड रिफॉर्म्स सिंस इंडिपेंडेंस, इन वी. बी. सिंह (संपादित) इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया (1857–1956) एलाइड पब्लिशर्सः इंडिया।

6. कोठारी, रजनी, (संपादित) 1970 कास्ट इन इंडियन पॉलिटक्स, ओरियंट, लौंगमैनः नई दिल्ली।

7. कुप्पूस्वामी, बी., 1984 सोशल चेंज इन इंडिया, विकास पब्लिशिंग हाऊसः नई दिल्ली लिंच, ओ.एम., 1969 द पॉलिटिक्स ऑफ अनटचेबेलिटी, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेसः न्यूयॉर्क।

8. मैंडलबॉम, डी.जी. 1972. सोसायटी इन इंडिया, पॉपुलर, प्रकाशनः बम्बई. मैरियट।

9. मैकिम, 1955. सोशल स्ट्रक्चर एंड चेंज इन ए. यू.पी. विलेज, इन एम. एन. श्रीनिवास (संपादित) इंडियाज विलेजेज. एशिया पब्लिशिंग हाऊसः नई दिल्ली।

10. मिश्रा, बी.बी., 1978 दी इंडियन मिडिकल कलासेज पापलर प्रकाशनः बम्बई पण्णिकर, के. एम., 1955. हिंदू सोसायटी एट द क्रांस रोड्स एशिया पब्लिलिंशग हाऊसः बम्बई।

****